IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता : पं0 दीनदयाल उपाध्याय

डॉ0 शिल्पी जायसवाल
पोस्ट डाक्टोरल फैलो
पंडित दीनदयाल उपाध्याय पीठ,
सामाजिक विज्ञान संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रस्तावना : देश के प्रसिद्ध चिंतक, विचारक एवं राजनीतिक समाजसेवी पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का व्यक्तित्त्व न केवल युवा पीढ़ी को प्रेरणा देने वाला था बल्कि एक नई दिशा भी प्रदान करता था। दीनदयाल जी संस्कृति के माध्यम से राष्ट्रीयता को समझने की बात पर बल देते थे, उनका मानना था कि भारत की आत्मा को राजनीतिक अथवा आर्थिक दृष्टिकोण से समझने की अपेक्षा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समझना चाहिये। किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीयता उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के माध्यम से ही जानी जाती है और भारत उसमें अग्रगण्य है।

प्रस्तुत लेख के अन्तर्गत सशक्त भारत की तस्वीर को स्पष्ट करते हुये पं0 दीनदयाल जी के राष्ट्र तथा राष्ट्रवाद की अवधारणा को विश्लेषित किया गया है तथा सशक्त भारत के निर्माण हेतु इनकी महत्वपूर्ण भूमिका को वर्णित किया गया है। इसके साथ–साथ राष्ट्र की प्रकृति, भारतीय राष्ट्रवाद का वर्णन के साथ ही पश्चिमी देशों के राष्ट्र व राष्ट्रवाद का भी वर्णन किया गया है ताकि हम सभी भारत राष्ट्र, संस्कृति, राष्ट्रवाद की महत्ता को स्वीकृत करे व समझें।

राष्ट्र : पं0 दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्र की अवधारणा स्वयं में एक गहन चिंतन का विषय है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी राष्ट्र की भारतीयकृत परिभाषा देते हुए कहते हैं कि *भूमि, जन तथा संस्कृति के संघात से राष्ट्र बनता है।* ''संस्कृति राष्ट्र का शरीर, चिति आत्मा तथा विराट उसका प्राण है।''[1] दीनदयाल उपाध्याय जी भारत को प्राचीनकाल से ही भौगोलिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक रूप से 'एक राष्ट्र' के रूप में प्रतिपादित करते हैं।[2] इसके साथ ही दीनदयाल जी ने यह वर्णित किया कि राष्ट्र चार तत्त्वों से मिलकर बनता है– प्रथमः – भूमि और जन– जिसे देश कहते हैं, दूसरी :– सबकी इच्छाशक्ति अर्थात् सामूहिक जीवन का संकल्प, तीसरी– एक व्यवस्था जिसे नियम या संविधान की संज्ञा दी जाती है इस सन्दर्भ में सबसे उपर्युक्त शब्द है (जो कि हमारे यहाँ प्रयुक्त हुआ है)।– ''धर्म'' तथा चौथा है– 'जीवन आदर्श।'।

इन चारों का समुच्चय अर्थात् ऐसी समष्टि को राष्ट्र कहा जाता है। जिस प्रकार व्यक्ति के लिये शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा जरूरी है, इन चारों को मिलाकर व्यक्ति बनता है, उसी प्रकार देश, संकल्प, धर्म और आदर्श के समुच्चय से राष्ट्र बनता है।[3] राष्ट्र एक सजीव मनुष्य की भांति है। मनुष्य के साथ राष्ट्र की भी एक अन्तर्रात्मा होती है, एक सचेतन पुरूष होता है जो राष्ट्र के राजनीतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक रचना को धारण करते हैं, गठित करते हैं एवं संचालित करते हैं।[4] राष्ट्र की आत्मा को शास्त्रीय नाम दिया गया है जिसे 'चिति' कहा गया है। मैक्डूगल के अनुसार– किसी भी समूह की एक मूल प्रकृति होती है, वैसी ही 'चिति' भी समाज की वह प्रकृति है जो जन्म से है तथा ऐतिहासिक कारणों से इसका निर्माण नहीं होता है।[5] चिति ही किसी भी राष्ट्र की आत्मा है जिसके सम्बल पर ही राष्ट्र का निर्माण सम्भव है, चितिविहिन राष्ट्र की कल्पना व्यर्थ है, राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक 'चिति' के अन्तर्गत आता है इसके साथ ही राष्ट्रीय हित से जुड़ी विभिन्न संस्थाएँ भी 'चिति' में से जुड़ी है व इसके अन्तर्गत आती है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि 'चिति' में व्यक्ति व राष्ट्र दोनों का ही समावेश है।[6] अब यदि हम यहाँ कुछ प्रश्नों का विश्लेषण करें तो यहाँ निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है– 'चिति' क्या है....?

1. 'चिति' राष्ट्र की आत्मा है।
2. 'चिति' राष्ट्र का चैतन्य है।
3. 'चिति' राष्ट्रीय संस्कृति का नियामक है।
4. 'चिति' राष्ट्र की विशेष प्रकृति है।
5. 'चिति' राष्ट्र की विभिन्न संस्थाओं की जननी है।
6. 'चिति' राष्ट्र के उत्थान एवं पतन को निर्धारित करती है।
7. प्रत्येक समाज 'चिति' के साथ ही उत्पन्न होता है।
8. 'चिति' ईश्वरप्रदत्त होती है।

'चिति' संबंधी अवधारणा वस्तुतः पं0 दीनदयाल उपाध्याय के 'राष्ट्रवादी' मानस की उपज है। चिति वह मापदण्ड है जिससे प्रत्येक वस्तु को मान्य अथवा अमान्य किया जाता है। यही राष्ट्र की आत्मा है, इसी आत्मा के आधार पर राष्ट्र मजबूत रूप से खड़ा होता है व यही आत्मा राष्ट्र के प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण द्वारा प्रकट होता है।[7] सामान्यतः लोग राज्य को ही राष्ट्र की संज्ञा देते है; ये एक गलत धारणा है, 'राज्य' राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला एक अंग है। राज्य अनेक अवसरों पर राष्ट्र का प्रतिनिधित्व भी करता है, इसी कारण राज्य ऐसा महत्वपूर्ण तत्त्व है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। किंतु इन कारणों के आधार पर राष्ट्र व राज्य को एक ही धारणा का पर्याय नहीं माना जा सकता।

राष्ट्र एक जीवमान ईकाई है जो कि स्वयं प्रकट होता है व राज्य सहित अनेक ईकाइयों का निर्माण करता है, ये सभी ईकाइयाँ राष्ट्र के लिये पोषक का कार्य करती है।

यजुर्वेद में **'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः'** मंत्र द्वारा यही मनीषा व्यक्त की गई है कि हम जागते रहेगें अर्थात् राष्ट्र को जागृत रखेगें।[8]

पं0 दीनदयाल जी का यह मानना था कि हमारे प्राचीन राष्ट्र का अन्य राष्ट्रों से भिन्न अपना एक अलग व्यक्तित्व है, उसकी अपनी एक विशेष अस्मिता है, उसका एक अपना प्रकृतिधर्म है, यह स्वत्व सिद्ध हो चुका है।[9]

भारत एक प्राचीन राष्ट्र है, इसी के साथ एक प्रबल धारणा यह है कि भारत 'हिंदू राष्ट्र' है। पं0 दीनदयाल जी यह मानते हैं कि 'रेखागणित व न्याय में कुछ बातें स्वयं सिद्ध होती है। वैसे ही भारत एक हिन्दू राष्ट्र है– स्वयं सिद्ध है।[10] भारत की हिंदू राष्ट्रीयता के बारे में कोई संदेह नहीं है– **'त्वं हि दुर्गादशप्रहरणधारिणी'** कहते हुये भारतीय समाज मातृभूमि के प्रति ध्यान धरता है, महाराणा प्रताप अथवा अकबर? आपका राष्ट्रपुरूष कौन है? यह प्रश्न पूछे जाने पर तुरंत 'राणा प्रताप' का चयन जो समाज करता हो, ऐसा समाज ही हिन्दू समाज है।[11]

राष्ट्रवाद की प्राचीन अवधारणा

राष्ट्रवाद की भावना मानव में भौगोलिक एवं सांस्कृतिक कारणों से सहज ही उत्पन्न हुई थी, किन्तु साम्राज्यवाद के विरोध में इसका उद्भव हुआ तथा प्रतिक्रियावादी अधिष्ठान पाकर वह साम्राज्यवाद का कारण भी बनीं। विदेशी साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघीय व लोकतांत्रिक राष्ट्रवाद का उद्भव हुआ।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि मुख्यतः दो ही प्रकार के राष्ट्रवाद है–

1. आक्रामक एवं

2. उदार राष्ट्रवाद।[12]

मैजिनी के आदर्शवादी मानववादी राष्ट्रवाद की धज्जियाँ उनके स्वयं के ही देश इटली में उद्भूत 'फासीवाद' ने बड़ी बेरहमी से उड़ा दी। उदार राष्ट्रवाद की अवधारणा 'जन' में सार्थक एकता की खोज का प्रयत्न है जो मानव की स्वतंत्रता, मातृत्व व समानता की रक्षक सिद्ध हो सकें।

मैजिनी ने अपने मानवतावादी राष्ट्रवाद के उन्नीस सूत्रों का वर्णन किया है। इसमें 17वाँ है–

''प्रत्येक 'जन' का अपना जीवनलक्ष्य होता है। सामान्यतः स्वीकृत मानवीय जीवन लक्ष्य की संपूर्ति में जो सहयोग होता है वह जीवनलक्ष्य ही उसकी राष्ट्रीयता का निर्माण करता है। राष्ट्रीयता पवित्र होती है।[13]

अर्नेस्ट रीनां राष्ट्र की नस्ल, भाषा, मजहब, भू–क्षेत्र, वर्गीय हित संबंधी अवधारणाओं का खंडन करते हुए कहते हैं कि –राष्ट्र एक आध्यात्मिक सारतत्त्व है। इसके मुख्य दो तत्त्व है– 'समृद्ध परंपरा की स्मृतियों का

साझापन' तथा 'समझौतेपूर्वक साथ रहने और जीने की बलवती इच्छा।' रीनां राष्ट्र के अस्तित्व को 'सतत जनमत–संग्रह' बताते है।

इस प्रकार के संकल्पित राष्ट्रीयता अभी विश्व में कहीं भी स्थापित नहीं हुई है। यह निश्चित है कि 20वीं सदी में विकसित राष्ट्रवाद पर इनका प्रभाव अत्यन्त है।[14] विश्व में कुछ राष्ट्र ऐसे है जिन्होंने राष्ट्रीयता के नाम पर मानवता के संदर्भ में संकट उत्पन्न किया है, इन सभी राष्ट्रों के इतिहास का अध्ययन व विश्लेषण किया जाये तो यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि इसके लिये राष्ट्रीयता उत्तरदायी नहीं है अपितु वहाँ का सम्पूर्ण जीवन चिंतन है, वहाँ के समाज का विकास सही ढ़ग से नहीं हुआ है। वरन् गलत रीतियों से हुआ है। पश्चिमी समाज में मनुष्य को स्वार्थी माना गया है, इसी के परिणामस्वरूप संघर्ष को भी स्वीकारा गया है। इसी संघर्ष के प्रतिउत्तर में राष्ट्रवाद का उदय हुआ, इन परिस्थितियों में जो राष्ट्र शक्तिशाली है, उसने स्वयं से अशक्त व कमजोर देश को परास्त कर उस पर आधिपत्य स्थापित किया है। इस सामूहिक स्वार्थ के आधार पर ही राष्ट्रीयता की उत्पत्ति व विकास हुआ। इस नकारात्मक धारणा के कारण राष्ट्र की आधारभूत अवधारणा व भूमिका सही रूप से प्रस्तुत नहीं हो सकी एवं ना ही राष्ट्रवाद का विकास सही रूप से हो सका वरन् घातक ही सिद्ध हुआ। पश्चिमी देशों में राष्ट्रवाद का उदय मानव के पारस्परिक समन्वय से नहीं वरन् संघर्ष से हुआ है। इसी के परिणामस्वरूप घृणा, द्वेष एवं विनाश ही उत्पन्न हुआ।

किंतु इन सभी आधारों व विश्लेषण के आधार पर भारत की राष्ट्रीयता अथवा भारतीय राष्ट्रवाद का मूल्यांकन करना उचित नहीं होगा।[15]

भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा

भारत में राष्ट्रवाद का विचार कुछ सौ वर्षों का नहीं, सहस्त्राब्दियों का है। उसका आधार संघर्ष नहीं वरन् समन्वय है, परम्परानुकुलता है। भारतवर्ष में मानव कल्याण का व्यापक व उदारजीवन दर्शन प्रकट हुआ। इस देश के अन्तर्गत सृष्टि में संघर्ष नहीं, पूरकता है। अनेक विभिन्नताओं में एक ही आत्मा का दर्शन करता है, वही श्रेष्ठ है, आर्य है, मनुष्यता के योग्य है। प्रतिद्वन्दता के स्थान पर परस्पर पूरकता को महत्त्व दिया गया। क्षमा, दया, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य को प्रमुखता दी गयी।[16]

भारत राष्ट्र की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है जो कि प्रागैतिहासिक काल से ही विकसित हो चुकी थी। 'ऋग्वेद' के अन्तर्गत भी राष्ट्र शब्द का उल्लेख मिलता है। पुराणों में भी भारत के विशेष संदर्भ में 'राष्ट्र का दर्शन' मिलता है, इसके साथ ही वाल्मीकि रामायण में हिमालय स्थित कैलाश पर्वत से त्रिकूट पर्वत या सरयू के सागर पर्यन्त भारत राष्ट्र की सुन्दर छवि स्पष्ट होती है।

समस्त इतिहासकारों के अनुसार, देवी शारदा की सर्वप्रथम वीणा की झंकार–भारतीय ऋग्वेद ही है।[17]

वैदिक युग से वर्तमान समय तक भारत में अनेकों राज्यों की उत्पत्ति, विकास एवं पतन हुआ, भारत कभी गणराज्य के रूप में उद्धृत हुआ तो कभी एक राज्य, कभी बड़े जनपद तो कभी छोटे जनपद। राम, कृष्ण, महावीर तथा बुद्ध सभी युगों में अनेक राज्यों के उत्थान–पतन हुए किंतु संपूर्ण भारत एक राष्ट्र बना रहेगा।[18]

भारत के संदर्भ में देखा जाये तो वैदिक ऋचाओं के अन्तर्गत सम्पूर्ण विश्व ही राष्ट्र के रूप में स्वीकार किया गया है। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना के अन्तर्गत किसी भूखण्ड अथवा देश की संकीर्ण सीमा को राष्ट्र की संज्ञा प्रदान नहीं की गई है। तैत्तिरीय संहिता के अन्तर्गत यह वर्णित किया गया है– **राष्ट्रं प्रजा राष्ट्रं पशवो राष्ट्रछेष्ट्री भवति।।**

अर्थात् प्रजा राष्ट्र है, पशु राष्ट्र है तथा जो कुछ श्रेष्ठ है, वह राष्ट्र है। चतुर्विध संहिताओं में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग विविध विभक्तियों में हुआ है। यथा– राष्ट्रम्, राष्ट्रस्य, राष्ट्रम् इत्यादि अर्थों में तो यजुर्वेद में राष्ट्रदा, राष्ट्रम्, राष्ट्रे इन अनेक अर्थों में प्रयुक्त है।[19]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय एवं राष्ट्रवाद की अवधारणा :

पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी भारत में विकसित राष्ट्रवाद को भारतीय परिस्थितियों में उत्पन्न एक विशेष प्रकार के हिन्दू राष्ट्रवाद के रूप में स्वीकार करते हैं।

''ईश्वरवृत्त देश आर्यावर्त में हम स्वतंत्रतापूर्वक रहें। यह एक ऐसी भावना है जो कि राजनीतिक व भौगोलिक दोनों है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति प्रारम्भ से ही यह समझते रहे कि आर्यावर्त में हिन्दुओं का ही राज्य रहना चाहिये।[20] दीनदयाल जी ने भारत के राष्ट्रीय जीवन को हिंदू संज्ञा प्रदान किया है। इसे उन्होंने कालजयी रूप में स्वीकार किया है। 'हमें काजलयी, स्थायी, सक्षम, आत्मनिर्भर, व्यावहारिक एवं स्वाभाविक संगठन हेतु राष्ट्र को ही आधार मानना होगा। कश्मीर से कन्याकुमारी तक प्रत्येक व्यक्ति के अन्तःकरण में भारत के एक अत्यन्त प्राचीन राष्ट्र है।[21]

पं0 दीनदयाल जी ने यह स्पष्ट किया है कि एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में भारत पश्चिमी अवधारणाओं जैसे– व्यक्तिवाद, लोकतंत्र, समाजवाद, साम्यवाद एवं पूंजीवाद पर निर्भर नहीं हो सकता। हमें पाश्चात्य विचारधारा से ऊपर उठकर भारतीय विचारधारा को आत्मसात करना होगा, तभी हम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के माध्यम से छद्म राष्ट्रवादी विचारधारा से मुक्त हो सकेंगे।[22]

दीनदयाल जी का यह मत था कि बिना विशुद्ध राष्ट्रभावना के कोई भी राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता और न ही अपनी स्वतंत्रता को भी सुरक्षित रख सकता है। राष्ट्रीयता का ज्ञान धूमिल पड़ने के कारण ही हम इन विषम परिस्थितियों में फंसे हुये है। इससे बाहर निकलने के लिये राष्ट्र का भावात्मक आधार स्पष्ट करना होना। राष्ट्रीय

आदर्शों एवं आंकाक्षाओं की जड़े मजबूत होने से ही महान राष्ट्र बन सकता है। राष्ट्र के स्वरूप का परम्परागत सच्चा साक्षात्कार होने से राष्ट्रीय जीवनोद्देश्य का ज्ञान होता है।[23]

इसलिये दीनदयाल जी इस बात पर भी बल देते थे कि पश्चिम के राष्ट्रवाद से भारत के राष्ट्रवाद की तुलना नहीं करनी चाहिये। पश्चिमी देशों ने जहाँ संघर्ष को प्रमुखता दी तो वहीं भारत ने एकात्मकता को बढ़ावा दिया, यूरोप के देशों में राष्ट्रवाद के नाम पर भीषण संघर्ष एवं विनाश हुआ, इसलिये भारत के प्रति भी यह आंशका व्यक्त की गई कि शायद राष्ट्रीयता के नाम पर यह भी संघर्ष हो किंतु यह सभी आंशकायें व्यर्थ सिद्ध हुयी। भारत की राष्ट्रीयता का सहस्रों शताब्दियों का इतिहास इस तथ्य की पुष्टि करता है। भारत के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि इसका इतिहास समस्त विश्व की मंगलकामना को बढ़ावा देता है। विश्व के विभिन्न देशों में प्राप्त तथ्यों व भारतीय इतिहास के अवशेष से यह सिद्ध होता है कि भारत देश ने प्राणिमात्र के कल्याण हेतु ही प्रयत्न किये है। यदि विश्व का कल्याण करना है तथा पश्चिमी राष्ट्रवाद की विभीषिकाओं तथा संघर्ष, विद्वेष, प्रतिद्वन्दिता की भावना से विश्व को स्वतंत्र करना है तो यह आवश्यक है कि भारत के सशक्त राष्ट्रवाद को ही संगठित और सक्षम बनाने का पूर्ण प्रयास करना होगा, तभी विश्व कल्याण सम्भव है।

पं0 दीनदयाल जी इस बात को स्वीकार करते हैं कि भारतवर्ष के प्रत्येक क्षेत्र में राष्ट्र की आत्मा का सर्वांगीण विकास हुआ है और यह भावना अत्यन्त बलवती भी रही। सम्पूर्ण भारतवर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक स्थापित हिंदू समाज, उनकी एक समान विचारधारा एवं कर्त्तव्यों से समन्वित सांस्कृतिक आधार पर एक अखंड राष्ट्रीयता की नींव पड़ी। दीनदयाल जी भारत के राष्ट्रवाद के महत्ता का उल्लेख करते हुए यह भी वर्णित करते हैं कि ईसा की आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में यूनान, मिश्र, स्पेन व फारस समेत अनेक राष्ट्रों की राष्ट्रीयता भंग हुई व समस्त देशों में स्थापित राष्ट्रवाद की भावना छिन्न–भिन्न हो गई किंतु भारतवर्ष के सशक्त राष्ट्रवाद की भावना को यह अरब राष्ट्रवाद की अवधारणा कमजोर नहीं कर पायी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अवलोकन किया जाये तो वर्तमान युग में भी वही संस्कृति हमारे हृदय में बसी हुई है। 'हिंदू' शब्द का उच्चारण करने से ही एक हिंदू का दूसरे हिंदू के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है। पं0 दीनदयाल जी यह कहते हैं कि इसी अखंड राष्ट्रीयता का आह्वान करने की आवश्यकता सम्पूर्ण भारतवर्ष को है तथा सिंधु से ब्रह्मपुत्र तक व सेतुबंध से हिमाचल तक सम्पूर्ण भारतवर्ष की भूमि के गौरव तथा स्वाभिमान की प्राप्ति हेतु हमें अपने कर्मठ पूर्वजों के प्रयत्नों को अपने जीवन में स्वीकार्य करना होगा तभी भारत में एक राष्ट्रवाद की भावना स्थापित हो सकती।[24]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. शर्मा, महेश चन्द्र. *दीनदयाल उपाध्याय : कर्तृत्व एवं विचार.* दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, 2015, पृ0 326
2. उपाध्याय, दीनदयाल. बौद्धिक एवं पंजिका, संघ कार्यालय झंडेवाला, दिल्ली संघ शिक्षा वर्ग, 19/05/1954, पृ0 07
3. उपाध्याय, दीनदयाल. *राष्ट्र जीवन की दिशा.* सं0 रामशंकर अग्निहोत्री, भानुप्रताप शुक्ल; लखनऊ : लोकहित प्रकाशन, 2008, पृ0 95–95
4. मिश्र, कौशल किशोर. *भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद : पं0 दीनदयाल उपाध्याय के संदर्भ में.* मेरठ : राहुल पब्लिशिंग हाऊस, 2021, पृ0 02
5. उपाध्याय, दीनदयाल. *राष्ट्र जीवन की दिशा.* उपरोक्त, पृ0 61
6. शर्मा, महेश चन्द्र. उपरोक्त, पृ0 323
7. वही. पृ0 331
8. उपाध्याय, दीनदयाल. *राष्ट्र जीवन की दिशा.* उपरोक्त, पृ0 44
9. भिषीकर, चन्द्रशेखर परमानन्द. *पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन : राष्ट्र की अवधारणा.* खण्ड 5. नई दिल्ली : सुरूचि प्रकाशन, 2014, पृ0 06
10. उपाध्याय, दीनदयाल. बौद्धिक एवं पंजिका, संघ कार्यालय झंडेवाला. दिल्ली संघ शिक्षा वर्ग, 19/08/1961, पृ0 101
11. उपाध्याय, दीनदयाल. *राष्ट्र जीवन की दिशा.* उपरोक्त, पृ0 167
12. मिश्रा, कौशल किशोर एवं अग्रवाल, शिवाली. *पं0 दीनदयाल उपाध्याय का राजनीतिक दर्शन.* मेरठ : अनु बुक्स, 2017, पृ0 36.
13. शर्मा, महेशचन्द्र. उपरोक्त, पृ0 327
14. मिश्रा, कौशल किशोर एवं अग्रवाल. शिवाली. उपरोक्त, पृ0 38.
15. उपाध्याय, दीनदयाल. *राष्ट्र जीवन की दिशा.* उपरोक्त, पृ0 89–90
16. शर्मा, महेशचन्द्र. (सं0) *दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय.* (खण्ड–15) नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, 2017, पृ0 47
17. मिश्र, कौशल किशोर. उपरोक्त, पृ0 2–3
18. जैन, सुमन., *सांस्कृतिक राष्ट्रवाद (कुषाणकाल के विशेष संदर्भ में).* भारतीय परम्परा में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा'', पार्श्वनाथ विद्यापीठ, 11–13 नवम्बर 2022, वाराणसी. पृ0 05–06
19. शतपथ ब्राह्मण 9.4.11., ऋग्वेद 3, 10.126.4.42.1.7, 10.124.5.6.4.5 आदि, यजुर्वेद 10.2.4.8, 12.11, 20.8.9. 23,20 इत्यादि।

20. पांडे, प्रीति. *डॉ0 अम्बेडकर और पं0 दीनदयाल.* जयपुर : ए0बी0डी0 पब्लिशर्स, 2006, पृ0 208

21. उपाध्याय, दीनदयाल. *राष्ट्र जीवन की दिशा.* उपरोक्त, पृ0 88

22. Mishra, Shyam Kartik. *Integral Humanism : Revisited in Contemporary India*. New Delhi : Kunal Books, pp. 186

23. गोयनका, कमल किशोर. *पंडित दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्ति दर्शन.* नई दिल्ली : दीनदयाल शोध संस्थान, 1972, पृ0 70

24. शर्मा, महेशचन्द्र. (सं0) *दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय.* (खण्ड–7) नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, 2017, पृ0 246–247